श्रीधन्वन्तरये नमः

वैद्यसम्मेलन-पत्रिका

निखिलभारतवर्षीयवैद्यसम्मेलनकी

द्वैमासिकी मुखपत्रिका

द्वितीय वर्ष } वैशाख-ज्येष्ठ १९७३ वैं० { चतुर्थ संख्या

वार्षिक मूल्य २)

सभासदोंको मुफ्त

विषय सूची।

श्रीकिशोरीदत्त शास्त्री, }
जगन्नाथप्रसाद शुक्ल। } सम्पादक।

वैद्यसम्मेलनपत्रिकाके नियम ।

(१) वैद्यसम्मेलनके उद्देश्योंको सिद्ध करनेके लिये और उसकी स्थायीसमिति और आयुर्वेदविद्यापीठकी कार्यवाहियोंका प्रचार करते रहनेके लिये यह पत्रिका दो दो महीनेमें प्रकाशित हुआ करेगी। (२) इसका वार्षिक मूल्य सर्वसाधारणसे दो रुपये और प्रत्येक फुटकल अङ्कका दाम ।=) है; किन्तु वैद्यसम्मेलनके सब प्रकारके सभासदोंको यह मुफ्त मिलेगी। पिछले फुटकल अङ्क या अङ्कोंका दाम सभासदोंसे आधा लिया जायगा। (३) नमूनेके लिये इसकी एक कापी मुफ्त भेजी जायगी; इसके बाद ग्राहक अथवा सभासद न होनेसे पत्रिका नहीं भेजी जायगी। (४) इस वर्तमान स्वरूपमें इसकी नियमित पृष्ठ संख्या ३२ रहेगी किन्तु आवश्यकता होनेसे कभी कभी पृष्ठ संख्या कम और अधिक भी हो सकेगी। (५) पत्रिकाके सम्बन्धके पत्र, सम्पादकके सम्बन्धके लेख, चिट्ठी, बदलेके समाचारपत्र, विज्ञापन, समालोचनाकी पुस्तकें, मनीआर्डर आदि सब मन्त्री, नि० भा० वैद्यसम्मेलन-स्थायीसमिति दारागञ्ज-प्रयागके पतेसे भेजने चाहिये।

विज्ञापन।

(६) इस पत्रिकामें अश्लील विज्ञापन अथवा जिन्हें स्थायीसमिति या आयुर्वेदविद्यापीठ अस्वीकृत करे वे विज्ञापन नहीं प्रकाशित किये जायँगे। (७) विज्ञापनकी छपाई प्रत्येक बार प्रत्येक पृष्ठकी ५) आधेकी ढाई रुपये और चौथाईकी डेढ़ रुपये होगी। (८) पुस्तकों, सामयिकपत्रों और अप्रस्तुत भेषज वस्तुओं (जङ्गलकी जड़ी-बूटी, औषधोपयोगी खनिज द्रव्यादि) की छपाई प्रतिवार प्रति पृष्ठ ३) आधेकी डेढ़ रुपये और चौथाई पृष्ठकी १) ली जावेगी। (९) जो सज्जन साल भरकी छपाई एकदम भेज देंगे, उनसे फी रुपये डेढ़ आने कम लिये जावेंगे। अग्रिम मूल्य पाये बिना किसीका विज्ञापन छापा नहीं जायगा। (१०) वैद्यों, उपदेशकों और अध्यापकोंको आवश्यकता, वैद्यक सम्बन्धी सभाओंकी सूचना आदिके विज्ञापन एक बार मुफ्त छाप दिये जायँगे। अधिक बार छपानेके लिये प्रति बार प्रति पृष्ठका २), आधे पृष्ठका १) और चौथाई पृष्ठका ॥।) लिया जायगा। (११) उक्त नियमोंके विरुद्ध स्थायीसमितिकी आज्ञा बिना कोई कार्यवाही नहीं हो सकेगी; इसलिये कोई सज्जन व्यर्थमें पत्र व्यवहार न करें।

पता—मन्त्री नि० भा० वैद्यसम्मेलन स्थायीसमिति, दारागञ्ज—प्रयाग।

॥ श्रीधन्वन्तरयेनमः ॥
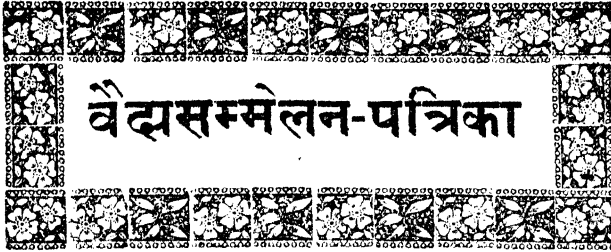
निखिलभारतवर्षीय वैद्यसम्मेलनकी स्थायीसमिति
और आयुर्वेदविद्यापीठकी ओरसे प्रकाशित ।

द्वितीय वर्ष } वैशाख-ज्येष्ठ सं० १९७२ वै० { चतुर्थ संख्या

किं ? कुतः ?

अयि प्रियमहाभागाः !

किं नाम नद्भिन कार्यं यत्कारणमन्तरैव प्रकृत्या विज्ञेन पूरुष-मात्रेण वा यथायथं नोपयुज्यते । प्रकृत्यैव निद्रा-क्षुधा-पिपासादयोऽस्माभिरनुभूयन्ते, प्रकृत्यैव शयनाहारपयःपानादिभिरेते निवार्यन्ते, नैतदविदितमस्तिकेषामपि नः शरीरभाजाम् । परं च निद्रा कीदृशी? कथमभ्युपैति ? कोऽस्याः शयनोपायाः ? कथं वा तच्छमनाय स उप-पद्येत । यद्वा, केयं क्षुत् ? कुत एतस्या उत्पत्तिः ? भोजनादिना कुतः संशम्यते सेयम् ? (एवं पिपासापि) इत्यादि विज्ञेयमविदितमेव भवति तावत्, यावत् न यथावत् "किं ? कुतः ?"—इति ज्ञायेत । चिकित्साविधानेऽपि प्राक्निदानज्ञानायैव प्रयत्यते, निदानज्ञानम-न्तरा यथा चिकित्साज्ञाने न सम्यगवबोधो भवति तथा सर्वत्रापि न

स्य च न वस्तुनो निदान न कामाद् याथार्थ्यमुपलभ्यते ।

ये जिज्ञासवस्ते कारणान्वेषणे सर्वथा विचिकित्सां कुर्युः, विचिकित्सैव ज्ञानार्जने हेतुः, विचिकित्सैव विज्ञानवेत्तॄणां यशःस्तोमप्रसारिणी लतिका चिकित्सकैरपि सैव विचिकित्सा स्वीयज्ञान समुन्नत्यै सर्वदाश्रयणीया, यतो विचिकित्सयैव तेषां कालक्रमक्षीणः शास्त्रावबोधः प्राक्तन इव नव्यतयो भविता इत्याशास्यते।

अत्रैकं स्वास्थ्यविचारमुद्धहरामः। स्वास्थ्यं सर्वैरपि वाञ्छ्यते, तदर्थं च अब्वायू (आबहवा) सुविशुद्धौ सेव्यौ, ताभ्यामेव स्वास्थ्यं समुन्नमति, स्वास्थ्यमभिलषद्भिरेताववश्यं सेवनीयाविति ज्ञाततत्वो ऽज्ञाततत्वो वा सर्वोऽपि साधारणो जनः संफुल्लगल्लो वदति। परं च किमर्थमपां सेवनम्? विकृताश्चापः कथंकारं स्वास्थ्यहानिकराः? देहे कतरत्कार्यमपाम्? इति गदितुं न यथावत् पारयति। वायोश्च देहे कः सम-समवाय सम्बन्धः? कया वा रीत्या वायुः स्वास्थ्ये समुपकरोति इत्यादि कस्य कस्य ज्ञातमिति वयमपि गदितुं न पारयामः।

तदेव विचार्यते। अद्भिरेव शरीरस्य क्लिन्नत्वम्। अद्भिरेव विरहितं शरीरं शुष्कदारु इव न कथंचिद् आवर्जनादिसौष्ठवकार्ये यथोचितं क्षमत्वं सम्पद्यते। अपां द्रवत्वमेव रक्तस्य द्रवत्वसाधकं, तेनैव रक्तं द्रवीभूय सर्वत्र देहे प्रसरति, अद्भिरेव श्रोतांसि संकरवहा नाल्य इव पर्य्यवदाता भवन्ति। मूत्रं, स्वेदः, सप्तधातूनामुपधातूनां, कलानामाशयानां, मलानां कफपित्तयोर्वा द्रवांशः सर्वोऽप्यद्भिरेव सम्पद्यते। किमधिकं सर्वस्मिन्नपि देहे सर्वेभ्योऽपि देहसाधनवस्त्वंशेभ्यः समधिकः अतएवाहरहो यद्देहस्य क्षीणत्वं सम्पद्यते तत्र अपामेवाधिकांशः क्षीयते तदर्थमेव शरीरधारिणा प्रत्यहं जलं पेपीयते।

देहे यावन्तोऽप्युपादानांशाः स्वास्थ्ये तेषां सर्वेषामपि तत्तत्परिमाणे स्थितिरावश्यकी, प्रकृतिरपि पिपासया क्षुधा इच्छया वा तत्तत्पूर्त्यै प्रयतते। क्षति पूरणायावश्यकं किमपि सुविशुद्धमेव, यतः सुविशुद्धमेव कारणं सुविशुद्धं कार्यं सम्पादयति, अतएव सुविशुद्धा आपः स्वास्थ्यसम्पादकाः।

एवमेव वायुरपि, परं स कथं स्वास्थ्यायावश्यक इति विचार्यते। सर्वोऽपि जन्तुः श्वसिति प्रश्वसिति अतएव प्राणिति। जीवनकार्यमेतत् वायुरेव प्रकरोति, वायुरेव ऊर्ध्वश्रोतोभ्यः संचरन् कोष्ठस्य

दूषणानि वहिर्निर्गमयति, अधोमार्गेण च निस्सरन् मलमूत्रादि निस्सारयति। सांप्रतिकैर्यद्भिशिष्टज्ञानतन्तूनां स्यंदनादि साधकं तत्तत्कार्यकारकमवबुध्यते तदपि वायुरूपमेव। आहारस्य तत्तदांशयादिषु प्रापणम्, विश्लेषणादि, पित्तकफयो रक्तादीनां वा तत्तत्स्थानेभ्य आनयनादि सर्वमपि कार्यं वायोरेव। सर्वेषामपि वायुकार्याणां मूलसाधनौ श्वासप्रश्वासौ, श्वसन् यो वायुरन्तरिक्षाद्गृह्यते तेनैव वायोः कार्यजातं भस्रयेव प्रधम्यते। न हि श्वासमन्तरा सर्वमेतत् संभवति, न च प्रश्वासमन्तरा हृत्पटलफुफ्फुसोदरवर्त्तिदौर्गन्ध्यादि अपनुद्यते। अतः श्वासप्रश्वासौ हि जीवनहेतू तदर्थमेव सुविशुद्धस्य वायोः सेवनमुचितम्। इति सुविशुद्धाऽवायुसेवा समभिहिता। एवं सर्वत्रापि पथ्यापथ्ययोः पथ्यापथ्यत्वे नियतमेव किमपि निदानम्, तदेव विमृश्य बुद्धिमद्भिर्यथायोग्यं सेव्यासेव्यसमीक्षा कर्त्तव्या वक्तव्या च।

कोऽपि,

वैद्यम्मन्यः।

आयुर्वेदविद्यापीठ-परीक्षा।

परीक्षार्थियोंके लिये सूचना।

समय–निखिलभारतवर्षीय आयुर्वेदविद्यापीठकी वैद्यपरीक्षा, आयुर्वेदविशारद और आयुर्वेदाचार्य परीक्षा आगामी भाद्रपद कृष्ण (महाराष्ट्रोंके हिसाबसे श्रावण कृष्ण) त्रयोदशी, चतुर्दशी, आमावास्या और शुक्ल प्रतिपद शनिवार, रविवार, सोमवार और मंगल संवत् १९७३ वै०–अर्थात् तारीख २६, २७, २८ और २९ अगस्त सन् १९१६ ईस्वीको होगी।

परीक्षास्थान–इस वर्ष प्रयाग, लखनऊ, दिल्ली, खुर्जा, लाहौर, अजमेर, अहमदाबाद, बम्बई, पूना, मद्रास, कलकत्ता और बाँकीपुरमें केन्द्र नियुक्त हुए हैं; किन्तु यदि श्रावण शुक्ल ८ तक उपयुक्त संख्यामें प्रतिस्थानसे लगभग १० तक आवेदन-पत्र आ सकेंगे तो ढाका, आरा, गया, कानपुर, हरिद्वार, जबलपुर, अमरावती और

नागपुर स्थानमें भी परीक्षा-केन्द्र माने जांयगे । यदि इनमेंसे किसी स्थानसे समुचित संख्यामें आवेदन-पत्र नहीं आवेंगे तो वहांके परीक्षार्थियोंको पासके किसी अन्य केन्द्रमें परीक्षाके लिये आनेकी सूचना दी जायगी । इस वर्ष आयुर्वेदाचार्य-परीक्षा प्रयाग, कलकत्ता, मद्रास, पूना, बम्बई और दिल्ली नगरमें ली जायगी ।

विषय और प्रश्नपत्र–प्रथम दिन भाद्र कृष्ण १३ को १० बजेसे १ बजे तक सभी केन्द्रोंमें स्वास्थ्य-विज्ञानकी फिर २ बजेसे ५ बजे तक निदानकी परीक्षा होगी, दूसरे दिन १०। बजेसे १ बजे तक शारीरकी और २ बजेसे ५ बजे तक निघण्टुकी, फिर तीसरे दिन १० बजेसे १ बजे तक चिकित्सा विषयकी और २ बजेसे ५ बजे तक रस-शास्त्रकी परीक्षा होगी । प्रत्यक्ष रोग निदान और भेषज परिचय तथा रोगी देखकर चिकित्सा बतानेकी परीक्षा चौथे दिन सबेरे होगी ।

विशेष–वैद्य-परीक्षाके परीक्षार्थियोंको दो रुपये, आयुर्वेद-विशारदवालोंको तीन रुपये और आयुर्वेदाचार्यके परीक्षार्थियोंको पांच रुपये शुल्क देना होगा । परीक्षामें प्रविष्ट होनेका आवेदन-पत्र, नियमावली तथा पाठ्य-क्रमकी पुस्तिका मँगाने पर मन्त्रीसे मुफ्त मिलेगी । अन्य जिन जिन विषयोंमें पूंछना हो मन्त्रीसे पूंछें ।

सम्मेलन-संवाद ।

परीक्षोत्तीर्णोंकी पोशाक–नि० भा० आयुर्वेदविद्यापीठने अपने अधिवेशनमें निश्चय किया है कि आयुर्वेदविद्यापीठकी परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होनेवालोंका एक विशिष्ट परिच्छद होना चाहिये, जिससे सर्वसाधारणको सहज ही उनका परिचय हो सके । स्थिर हुआ है कि तीनों परीक्षाके उत्तीर्ण वैद्योंका चोगा (गाउन) श्याम वर्णका रहे । इसके सिवाय दोनों कन्धोंसे आकर छाती पर मिलनेवाले दो मखमली फीते लगाये जावें, जिनमेंसे एकमें नि० भा० आयुर्वेद-विद्यापीठ और एकमें उत्तीर्ण परीक्षाका नाम अङ्कित रहे । आयुर्वेदाचार्यके फीते सुनहरी जरदोज़ी तारसे, आयुर्वेदविशारदके रुप-

हले तारसे और वैद्यपरीक्षाके पीले रेशमी तागेसे टके रहें। अब यह विषय अन्तिम निर्णयके लिये वैद्यसम्मेलनकी स्थायीसमितिके अधिवेशनमें विचारार्थ उपस्थित किया जावेगा।

उपयोगी निबन्ध—वैद्यसम्मेलनकी इच्छा है कि आयुर्वेद-सम्बन्धी कुछ ऐसे निबन्ध तैयार कराये जांय, जिन्हें पढ़कर आयुर्वैदिक वक्ता और उपदेशक अपने आन्दोलनके विषय चुन सकें और उन्हें उचित प्रमाण और जानकारियोंसे सजा सकें। इसके सिवाय उन्हें पढ़कर वैद्यलोग और सर्वसाधारण जनसमूह परस्पर अपना सम्बन्ध और कर्तव्य भी जान सकें। इस कार्यका भार ब्यावर निवासी आयुर्वेदपञ्चानन पण्डित पूनमचन्द तनसुख व्यास महोदयको सौंपा गया है। वे समय समयपर स्थायीसमितिसे आवश्यक विषयोंमें परामर्श लेकर भारतके भिन्न भिन्न स्थानोंके विद्वानोंसे निबन्ध-पुस्तिका (ट्रैक्ट) लिखानेका प्रयत्न करेंगे। अभी स्थायीसमितिने निम्नलिखित विषयों पर ट्रैक्ट लिखाना आवश्यक समझा है—

१ आयुर्वेदका महत्व २ प्राचीन और अर्वाचीन औषधिशास्त्र ३ दीर्घजीवन ४ रजिस्ट्रेशन ऐक्ट और आयुर्वेद ५ दिनचर्या और ऋतुचर्या ६ दुर्व्यसन (चाय, तमाखू, गांजा, अफीम, चरस, शराब आदि) और आरोग्यता ७ ब्रह्मचर्य और बालविवाह ८ वैद्यसम्मेलनकी आवश्यकता और उसके उद्देश्य ९ आयुर्वेदकी हीनावस्था और उसके प्रति सर्वसाधारणका कर्तव्य १० भारतवर्षके लिये कौनसा चिकित्साशास्त्र लाभदायक हो सकता है? ११ स्वास्थ्यविज्ञान-सम्बन्धी सार्वजनिक सिद्धान्त १२ रोगी-परिचर्या १३ आगन्तुक उपचार १४ आयुर्वेदका जीवनसे सम्बन्ध १५ आयुर्वैदिक उपचार पद्धति पर विदेशी विद्वानोंकी सम्मतिका संग्रह १६ विद्यार्थि-जीवन १७ साँप, बिच्छू, मकड़ी, कुत्ता, कछुआ आदि विषैले जन्तुओंके काटनेकी चिकित्सा (शास्त्रानुसार, अनुभूत और व्यावहारिक प्रणालीके साथ) १८ प्लेग, हैज़ा, शीतला (टीकापर विचार सहित), ज्वर, मासिक रजकी शुद्धि तथा उसकी अप्रवृत्ति अथवा कष्टपूर्वक प्रवृत्ति पर विचार और उपचार, स्वप्न, प्रमेह, प्रसूतरोग, बाल-

चिकित्सा (विशेष कर पसली चलना, बालशोष या सूखा, निनाधा और जमुहा आदि पर विचार), मलेरिया, मधुमेह, क्षय, महाकास (Hooping Cough) आदि रोगों पर अलग अलग निबन्ध-पुस्तिका।

ऊपरके विषयोंकी निबन्ध-पुस्तिका अलग अलग प्रकाशित की जावेंगी। निबन्ध संस्कृत अथवा हिन्दी भाषामें लिखे जावें; किन्तु यदि कोई सज्जन किसी प्रान्तिक भाषामें लिखना चाहें तो लिख सकते हैं; किन्तु उनका निबन्ध यदि प्रकाश योग्य श्रेष्ठ समझा जायगा तो उसके अनुवादका उन्हें प्रबन्ध करा देना होगा। उक्त विषयोंका कोई प्रबन्ध फुलिस्केपके १६ पृष्ठोंसे कम नहीं होना चाहिये, विषयकी आवश्यकताके अनुसार निबन्ध १०० पृष्ठों तक लिखा जा सकता है। जिनके प्रबन्ध उत्तम ठहरेंगे उन्हें समितिके निश्चयके अनुसार प्रशंसापत्र, रौप्यपदक अथवा स्वर्णपदक प्रदान किये जावेंगे। आशा है लेखक लोग ऐसे निबन्ध लिखकर समिति-की सहायता करेंगे।

वैद्यसेवासमिति–अब इस विषयकी बहुत आवश्यकता उपस्थित हुई है कि वैद्य लोग साधारण जनसमाज और उच्च सरकारी कर्मचारियोंके समक्ष प्रत्यक्ष और पुष्ट प्रमाणों द्वारा अपनी उपयोगिता और योग्यता स्पष्ट कर सिद्ध कर दें। यह काम कूप मण्डूक बने हुए घरमें जो आवे उसे दवा दे देने और किसी तरह अपना चरितार्थ चलानेसे ही नहीं सिद्ध होगा। इसके लिये वैद्योंको परिश्रम करना पड़ेगा, स्वार्थ त्याग करना पड़ेगा, अपनी कुछ हानि कर उग्रलोक-सेवा करनी पड़ेगी। देशके अनेक भागोंमें समय समय पर मेले हुआ करते हैं; वहां लाखों हजारोंकी भीड़ इकट्ठी होती है, उसमें अनेकों बीमार पड़ते हैं, आहत होते हैं। यदि वैद्य लोग अपनी सेवा-समिति बनाकर ऐसे अवसरोंमें धर्मार्थ औषधालयोंके द्वारा लोक-कल्याण साधन करें तो उनका ऐहिक पारलौकिक दोनों सिद्ध हों। शहरों और देहातोंमें ऋतु-विशेषमें प्लेग, हैजा, मलेरिया आदिका प्रकोप हुआ करता है। यदि ऐसी समितिके द्वारा जंगम औषधालय लेकर कुछ वैद्य घुमाये जावें तो केवल लोगोंका ही उप-

कार न हो, वैद्योंका प्रभाव भी भारतके गांव गांवमें दृढ़ हो जाय। गत हरिद्वारके कुम्भके समय हरिद्वारके ऋषिकुलने धर्मार्थ औषधालय खोले थे और कई वर्षोंसे प्रयागमें भी माघ-मेलेके समय धर्मार्थ औषधालय खोला जाता है; इनके अनुभवसे इस कार्यकी उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। इसलिये हरिद्वार ऋषिकुलके पण्डित नारायणदत्तजी वैद्यराजने वैद्यसम्मेलनकी स्थायीसमितिमें इस विषयका प्रस्ताव उपस्थित किया था। समितिने इस प्रस्तावको स्वीकार किया है और स्थायीसमितिसे सम्मति लेते हुए ऐसी समितिका संगठन करनेकी उन्हें सम्मति दी है। उक्त पण्डितजी ऐसी समितिके मन्त्री अथवा संयोजककी हैसियतसे इसकी कार्यकारिणीसमितिका संगठन कर उसके उद्देश्य तथा नियमोपनियमकी प्रस्तावित पाण्डुलिपि तैयार कर स्थायीसमितिके पास भेजेंगे।

—:०:—

पूना निवासी वैद्योंने बड़े उत्साहके साथ स्वयं स्फूर्तिसे नियमानुसार सभा कर अष्टम वैद्यसम्मेलनका प्रबन्ध करनेके लिये स्वागतकारिणी सभा स्थापित कर ली। स्वागतकारिणी सभाका संगठन सभी श्रेणीके लोगोंके द्वारा बहुत ही प्रभावशाली रीतिसे हुआ है। उस दिनकी सभामें खाली पूनेके ही वैद्य, डाक्टर, अगुआ, रईस, वकील आदि उपस्थित नहीं थे; बल्कि महाराष्ट्र विभागके कई स्थानोंके प्रतिनिधि स्वयं उपस्थित हुए थे और कोल्हापुर, सांगली, मिरज, बेलगांव, बम्बई, नागपुर, बड़ोदा, नासिक, अहमदाबाद, सोलापुर, आदि अनेक स्थानके वैद्योंने तार और पत्रों द्वारा सहानुभूतिका सन्देशा भेजा था। सभापति डाक्टर अण्णा साहब पटवर्धनने कहा—पूर्वी और पश्चिमी वैद्यककी सच्ची परीक्षा लेनी हो तो एक ही ढङ्गके पचास पचास रोगी दोनों पद्धतिवालोंको चिकित्साके लिये दे दें। फिर देखा जाय कि किसके रोगी अधिक अच्छे होते हैं और उनके शरीर पर उसका स्थायी परिणाम होता है। कृष्णशास्त्री कवड़ेने कहा कि जहां जहां सम्मेलन हुआ है, वहांके सरकारी अधिकारियोंने इसके साथ सहानुभूति दिखाई है। कविराज गणनाथ सेन, कविराज योगीन्द्रनाथ सेन, लेफ्टिनेण्ट कर्नल कीर्तिकर सरीखे सरकार और प्रजामान्य सज्जन इसके सभापति

हो चुके हैं। कई वर्षोंसे सम्मेलनके साथ प्रदर्शिनी हो रही है। ऐसे सम्मेलनके स्वागतके लिये हम महाराष्ट्रीयोंको तैयार होना चाहिये; और भी कई सज्जनोंके प्रभावशाली व्याख्यान हुए। स्वागतकारिणी-के सभापति ऋषि-तुल्य डाक्टर अण्णा साहब पटवर्धन, उपाध्यक्ष प्राणाचार्य बालशास्त्री लागवणकर और वे० वासुदेव शास्त्री शेंडा-णीकर हुए हैं। मन्त्रियोंमें डाक्टर न० गो० सरदेशाई, डाक्टर गो० स० पकसुले, डाक्टर रा० गो० वर्भे, वैद्यभाऊ साहब पटवर्धन, वैद्यभूषण गणेश शास्त्री जोशी, भिषग्रत्न गंगाधर शास्त्री जोशी और वैद्यपञ्चा-नन पण्डित कृष्णशास्त्री कवड़ेके नाम हैं। वैद्यसम्मेलनका जनक बम्बई प्रान्त है। आनन्दकी बात है कि आठ वर्षोंके पश्चात् वह अपने उसी प्रिय प्रान्तमें फिर पहुंचा है। हमें पूरी आशा है कि पूने-का सम्मेलन एक आदर्श सम्मेलन होगा। वहांके निवासी अभीसे उद्योग कर रहे हैं। भिन्न भिन्न स्थानके वैद्योंको उचित है कि उसकी प्रदर्शिनी ठाठदार बनानेके लिये अभीसे उद्योग करें। जो वनस्पति विशेष कर उन्हींके प्रान्तमें होती है उसके नमूने गमलोंमें लगा कर भेजनेका प्रबन्ध करें। इस वर्षका सम्मेलन कई स्थायी कार्य करने-की इच्छा रखता है। ईश्वर उसका उद्योग सफल करे।

समाचार।

बात क्या है ?—हमें पता लगा है कि आगरा, सागर, सरगोधा, मैनपुरी आदिके सिविल सरजनोंने अपने शहरके कुछ अथवा सब वैद्योंको बुलाकर उनसे विविध प्रश्न किये हैं। सम्भव है ऐसी जांच और भी कई जगह हुई हो। इसलिये जहां जहां ऐसी घटना हुई हो, वहांके वैद्योंसे हमारा निवेदन है कि इस विषयका पूरा वार्तालाप और संवाद हमारे पास लिख भेजें। जिससे वैद्यसम्मेलन-कार्यालय इस बातका पता लगा सके कि ऐसी जांच क्यों हो रही है; तथा ऐसी जांच सरकारी इच्छासे हो रही है अथवा केवल सिविल सर-जनोंका विनोद ही इसका कारण है।

लकोंको चाहिये—जिससे कि रोगियोंकी अवस्थाका ज्ञान पहले नाड़ीसे किया जाय, और उसको ध्यान पूर्वक रोगि प्रतिपादित अवस्थाओंसे मिला जाय। इसका सुप्रबन्ध करके उसकी ज्ञान वृद्धिका यत्न करें। आशा है कि सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर अवश्य ही अपने शरणागत भारतवासियोंको हार्दिक भावसे जानकर अवश्य ही उनका इष्ट वस्तुसे संयोजित करेंगे।

नाड़ी ज्ञानकी उपयोगिता।

(श्रीयुक्त गोरेलाल जैन व्यावरा, मालवा।)

बड़े आनंद, सौभाग्य और हर्षका विषय है कि इस चतुर्थ वैद्यकसम्मेलनमें १७ वां निबन्ध "नाड़ी ज्ञानकी उपयोगिता" के विषयमें रखा गया है। आयुर्वेदमें नाड़ी ज्ञान जैसे आवश्यक और मूलभूत सिद्धांतोंमें जैसी कुछ गड़बड़ और परस्पर विरुद्धता प्रतीत होती है, उसको देखकर खेद और आश्चर्य होता है। इतना ही नहीं, कभी कभी मनुष्य तो आयुर्वेदके नाड़ी विज्ञान विषयक सिद्धांतोंका हास्य करते हैं। ऐसी दशामें इस बातकी अत्यन्त आवश्यकता है कि इस बृहत् सम्मेलनमें इस विषयके सम्पूर्ण सिद्धांतों पर हर प्रकारसे पूर्णतया विचार और यथोचित मीमांसा की जावे। जो सिद्धांत सर्व वैद्यराजोंकी सुयोग्य सम्मति अथवा बहुसम्मतिसे परीक्षा और विचारकी कसौटीपर सत्य और मान्य निश्चित हो, उसको सर्वसाधारणके लाभार्थ प्रकाशित किया जावे।

मेरी अभिलाषा तो यह थी कि इस विषय पर एक विस्तृत लेख लिखकर सम्मेलनमें स्वयं उपस्थित होकर अर्पण करता; किन्तु अनेक कारणवशात् उपस्थित नहीं हो सकता, जिसका मुझे पश्चाताप है। अस्तु संक्षिप्तरूपसे दिग्दर्शन मात्र निवेदन करता हूं और आशा करता हूं कि इसपर अवश्य ही सम्मेलनमें विचार होकर सतासतका निर्णय किया जावेगा।

नाड़ी परीक्षाके महत्वका वर्णन करना सूर्यको दीपक दिखाना है। कोई वैद्य, "वैद्य" कहलानेका अधिकारी नहीं हो सकता, जब

तक कि उसको नाड़ी परीक्षाका ज्ञान न हो। महर्षि कणाद इस विषयमें कहते हैं कि—

सर्वासां चैव नाड़ीनां लक्षणं यो न विंदति।
मारयत्याशुवैजंतून्स वैद्यो न यशो लभते॥
—नाड़ी विज्ञाने।

तथा

बोधहीनं यथाशास्त्रं भोजनं लवणं विना।
पतिहीना यथा नारी तथा नाड़ी विना भिषक्॥
—नाड़ी दर्पणे।

इत्यादि बहुतसे प्रमाण हैं, जिनका विस्तारभयसे लिखना अनावश्यक है। इसलिये केवल इतना ही लिखकर नाड़ी ज्ञानकी श्रेष्ठताके विषयमें कुछ कहता हूं।

इस शरीर सम्बन्धी समस्त रोग नाड़ीज्ञान द्वारा ही सद्वैद्योंको प्रतीत हो जाता है। यथा—

वातं पित्तं कफं द्वन्द्वं सन्निपातं रसं त्वसृक्।
साध्यासाध्य विवेकं च सर्वं नाड़ी प्रकाशयेत्॥
—ना० वि०।

आयुर्वेदशास्त्रोंमें कहा है कि—जैसे जौहरी अपनी बुद्धिके अभ्याससे हीरा मोती आदि रत्नोंकी सत्यासत्यता तथा मूल्यको जान लेता है, उसी तरह सद्वैद्य शास्त्रके अभ्यास और बुद्धिके बलसे रोगीके रोगकी साध्यासाध्यता तथा शरीर संबंधी समस्त सुख दुःखकी चेष्टाको जान लेते हैं। जिस प्रकार योगीजन योगद्वारा परब्रह्मको जान लेते हैं, इसी प्रकार वैद्य अपनी बुद्धि द्वारा नाड़ीके अभ्याससे शरीरके सम्पूर्ण रोगोंको जान लेते हैं।

किसी समय यह भारत-वसुन्धरा ऐसे ऐसे अनुभवशील, तत्ववेत्ता सद्वैद्योंसे विभूषित थी कि जो केवल नाड़ी परीक्षा द्वारा ही शरीरकी सम्पूर्ण व्यथा बतला दिया करते थे। उनका अनुभव और ज्ञान यहांतक बढ़ा चढ़ा था कि यह बात तो सहजहीमें बतला देते थे कि अमुक पुरुषने इस समय अमुक वस्तु खायी है। यही नहीं, एक एक वर्ष पूर्व इसी नाड़ी ज्ञानके बलसे मृत्युका हाल भी कहते

थे; परन्तु आज वह समय है कि नाड़ी ज्ञानके वेत्ता और मर्मी विरले ही वैद्य रह गये हैं। जब उस समयकी तुलना इस समयसे की जाती है तो शोकके सागरमें डूबना पड़ता है और कविका यह वाक्य बिलकुल चरितार्थ होता है।

"समयके फेरसे सुमेरु होत माटीको"

अब वह समय है कि नाड़ी परीक्षाको लोग केवल ढकोसला समझते हैं; और तरह तरहके कुतर्क और मखौल किया करते हैं। परन्तु क्या उनके ऐसे विचारोंसे नाड़ी ज्ञानका महत्व कुछ कम हो सकता है, कदापि नहीं। वास्तवमें यह उनकी बड़ी भारी भूल है। सृष्टिका यह भी एक अटल नियम है कि किसी भी विज्ञानका कभी नाश नहीं होता, इसी नियमानुसार आज भी कोई कोई वैद्यरत्न ऐसे इस भू-मण्डल पर विद्यमान हैं कि जिनका नाड़ी विज्ञान विषयक अनुभव बड़े ऊंचे दर्जेका है, जिसको देखकर नयी रोशनीके नवयुवकगण विस्मित होते हैं और आयुर्वेदकी प्रशंसा किये बिना उनसे रहा नहीं जाता। अबतक जितने नवीन नवीन उपाय रोग विज्ञानार्थ विद्वानोंने निकाले हैं वह कोई भी नाड़ी परीक्षाकी समता नहीं कर सकते हैं।

यह नाड़ी ज्ञानका मार्ग और उपदेश उन त्रिकालदर्शी महर्षियोंका बताया हुआ है, कि जिनका योगाभ्यास, तपोबल, विज्ञान, अनुभवादि अन्तिम सीमाको पहुंचा हुआ था। उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि तथा अपूर्व शक्ति द्वारा जो कुछ निर्णय किया और जाना उसको गुप्त न रखकर हमारे कल्याणार्थ दिवाकरवत् प्रकाशित किया। क्या उनके इस महोपकारसे हम कभी उऋण हो सकते हैं।

अब नाड़ी ज्ञानके सिद्धांतोंकी ओर आपके पवित्र चित्तको आकर्षित करना चाहता हूं, महर्षि "कणाद" का मत है—

आदौ च वहते वातो मध्ये पित्तं तथैव च।
अंते च वहते श्लेष्मा नाडिका त्रय लक्षणम्॥
ना० वि०।

अब देखिये, मूल श्लोक तो यह है, जिसके अर्थ टीकाकारोंने स्वइच्छानुसार कई तरहसे किये हैं—

(१) कईने तो यह अर्थ किया है कि "अग्रभागमें नाड़ीके वायु-की गति होती है, मध्यस्थानमें पित्तकी, अंतमें कफकी गतिको वैद्य जाने"।

(२) दूसरा अर्थ इस प्रकार किया है कि "जिस समय वैद्य कोहनीको पकड़ता है उसके द्वितीय क्षणमें प्रथम वातकी नाड़ी, फिर मध्यमें पित्तकी, और अंतमें कफकी नाड़ी चलती है"। यह बात सर्वथा निर्मूल है; क्योंकि स्थानका नियम कहीं नहीं किया। सत्य तो यह है कि महर्षियोंके सूत्रोंके असली रहस्यको समझना बड़ा ही कठिन है।

जब निम्नलिखित श्लोकों पर दृष्टि पड़ती है तो नं० २ का अर्थ असत्य मालूम होता है। देखिये नाड़ीज्ञान-प्रकाशका यह श्लोक—

अग्रे वातवहा नाड़ी मध्ये भवति पित्तला।
अंते श्लेष्म विकारेण नाड़ी ज्ञेया बुधैः सदा॥

इस श्लोकका अर्थ इस प्रकार लिखा है, वायुको बहानेवाली नाड़ी अग्रभागमें होती है. पित्तको बहानेवाली नाड़ी मध्यमें होती है, कफको बहानेवाली अंतमें होती है, ऐसे वैद्योंको नाड़ी सब कालमें जाननी चाहिये।

इसके अतिरिक्त—

वाताऽधिके भवेन्नाड़ी प्रव्यक्ता तर्जनी तले।
पित्ते व्यक्ता मध्यमायां तृतीयांगुलिगा कफे॥
तर्जनी मध्यमा मध्ये वातपित्ताधिके स्फुटा।
अनामिकायां तर्जन्यां व्यक्ता वातकफे भवेत्॥
मध्यमाऽनामिका मध्ये स्फुटा पित्त कफेऽधिके।
अंगुल त्रितयेऽपि स्यात् प्रव्यक्ता सन्निपाततः॥

वैद्यरत्नमें एक दोहा लिखा है—

आदि मध्य और अंतमें, वात पित्त कफ जान।
क्रमते नाड़ी तीन विधि, यह नाड़ीका ज्ञान॥

यह दोहा भी बड़ा ही गूढ़ार्थ सूचक है। नाड़ी ज्ञान प्रकाशमें कहा है—

अंगुलि तृतयैः स्पृष्ट्वा क्रमाद्दोष त्रियोद्भवे।
मन्दां मध्यगतां तीक्ष्णां त्रिभिर्दोषैस्तु लक्षयेत्॥

इसका अर्थ इस प्रकार लिखा है कि, नाड़ीको तीन अंगुलियोंके स्पर्शसे तीनों दोषों करके मन्द, मध्य और तीक्ष्ण गति जाननी, अर्थात् प्रथम अंगुलीमें मध्य स्पर्श होनेसे वातकी, और बीचकी अंगुलीमें तीक्ष्ण स्पर्श होनेसे पित्तकी, तथा अनामिकामें मन्द स्पर्श होनेसे कफकी नाड़ी जाननी।

अब उपर्युक्त समस्त श्लोकोंका अर्थ विचारणीय है कि इन श्लोकोंका वास्तविक अर्थ क्या है?

"अमृतसागर" पुस्तकमें लिखा है कि हाथके अंगूठेके नीचे प्राणियोंकी जीवभूत साक्षी नाड़ी जीवके सुख दुःखको बताती है। तीन अंगुलियोंमें पहली अंगुलीके नीचे वायुकी मुख्य नाड़ी चलती है, और बीचकी अंगुलीके नीचे पित्तकी मुख्य नाड़ी चलती है; और पिछली अंगुलीके नीचे कफकी मुख्य नाड़ी चलती है। इस लेखमें मुख्य शब्द संयुक्त किया गया है। इस ग्रंथकी रचना भी जयपुराधीशने बड़े बड़े नामी वैद्यों द्वारा करायी थी। इसमें स्थानभेदको मान्य किया है, और वात-पित्त-कफका ही क्रम रखा है।

इसी प्रकार भावप्रकाश, बृहन्निघण्टु रत्नाकर, योगतरंगिणी, वैद्यरत्नादि कतिपय ग्रंथोंमें भी वात, पित्त, कफका ही क्रम माना गया है।

अब दूसरा क्रम इस प्रकार है-योगचिंतामणिमें लिखा है कि—

आदौ च वहते पित्तं मध्ये श्लेष्मा तथैव च।
अंते प्रभञ्जनो ज्ञेया सर्वशास्त्रविशारदै॥

अर्थ—आदिमें पित्तकी, मध्यमें कफकी, और अंतमें वातकी नाड़ी सर्वशास्त्रज्ञाता वैद्यों करके जानना।

नैनसुख, वैद्यप्रिया, दिल्लगन, रामविनोदादि छोटी छोटी पुस्तकोंमें भी योगचिंतामणिकी भांति ही नाड़ी परीक्षाका विवरण है।

नाड़ी ज्ञान तरंगिणीके कर्ता जोकि अपनेको कुल परम्परा वैद्य प्रकट करते हैं। ये इस प्रकार लिखते हैं कि मैं इस समयका काल,

बल, मनुष्योंकी अवस्थाको देखकर साक्षात ऋषियोंके वचनोंको कहता हूं। तथा पाराशर, सनत्कुमारका प्रमाण देते हुए, और इस प्रश्नको उठाकर कि प्रथम वात है या पित्त, वे इस प्रकार लिखते हैं-

पित्तं समीरणमथो हि कफं क्रमेण।
ह्यंगुष्ठमूलत इति प्रवदंति वैद्याः॥ तथा-
वाताधिका वहेन्मध्ये त्वग्रे वहति पित्तला।
अंते श्लेष्म वर्ता ज्ञेया मिश्रिते मिश्रिता भवेत्॥

इस मतकी पुष्टितरंगिणीकारने वायुके उदाहरणको देकर की है; जिसको सर्व वैद्य महाशयगण जानते ही हैं। इस कारण विस्तार भयसे उसको नहीं लिखा है। परन्तु "नाड़ी दर्पण"कारने तरंगिणी-कारके वायुके दृष्टांतका खण्डन इन शब्दोंमें किया है—"हमको शङ्का है कि नाड़ीका और आंधीका क्या संबंध है; क्योंकि आंधीमें आगे, पीछे, और बीचमें पवन ही कहाती है; परन्तु नाड़ीमें तो न्यारे न्यारे दोष हैं। जैसे वात, पित्त, कफ। फिर पवनका एक ही कर्म है; परन्तु इन तीनों दोषोंके कर्म पृथक पृथक हैं। इस कारण यह दृष्टांत ही असंभव है।

ज्ञानतरंगिणीकारने पित्त-वात-कफका क्रम मान्य करके भी एक विचित्र ही बात कही है—

वातस्थाने च या तीव्रा वातपित्तगदोद्भवा।
मंदा वातकफोमिश्रा मध्यमाधो हि नाड़िका॥
पित्तस्थाने च या वक्रा पित्तवातोद्भवा च सा।
मंदां पित्त कफातंक संभवा तर्जनी तले॥
कफस्थाने च या तीव्रा कफपित्तगदोद्भवा।
वक्रा श्लेष्म मरुमिश्रा तंके सानामिका तले॥

इस प्रकार पित्त, वात, कफका क्रम मान कर भी वह दोषों (वात, पित्त, कफ)का उक्त निर्धारित स्थानोंमें परिवर्तन (फेर-फार-उलटपुलट) मानता है। यह दोष परिवर्तनकी युक्ति एक निराली ही इस ग्रंथकारने मानी है। अन्य किसी भी ग्रंथमें दृष्टि-गोचर नहीं हुई। सद्वैद्योंको भी इसका निर्णय करना चाहिये कि क्या यह युक्तिशास्त्र सम्मत है।

इसी ग्रंथकारने पित्त-वात-कफकी पुष्टिका एक और दृष्टांत दिया है। पाराशर, सनत्कुमारको ग्रंथकर्ताने सिद्धांती कहा तो इसपर उनकी स्त्रीने तर्क किया कि आपने पाराशर और सनत्कुमार इन दोनोंको सिद्धांती कहे, तब दूसरे मुनि क्या मिथ्यावादी हैं? इसका उत्तर ग्रंथकारने यह दिया है।

"लोलाक्षि मुनयः सर्वे संति सत्य प्रवादिनः।
कलावस्मिन् प्रमाणानि वचनान्यनयोः किल॥

आयुर्वेदे धर्मशास्त्रे ज्योतिःशास्त्रे च पंडितः।
कलौ पाराशरं वाक्यं श्रेष्ठमाहुर्हि सर्वतः॥
तत्समं सुमतं तस्य नाड़ी ज्ञाने यतोस्तिह।
ततः सनत्कुमारस्याऽपि प्रमाणमिहेरितं॥
मुनीनां वाक्य सत्यत्वे हेतुं ते प्रवदाम्यहं।
युगानुरूपास्यानाड्यां दोषस्थान विकल्पना॥
संहितायां स्वकीयायां शिवे नोक्ता च सा प्रिये।
श्लेष्मकायाः पतिर्विष्णुः शुद्धसत्वमयश्च सः॥
अतश्चाग्रे कफो नाड्यां कृते सत्वमये स्थित।
तदा मध्यगतो वायुः पित्तमन्ते स्थितं प्रिये॥

वातिकायाः पतिर्ब्रह्मा रजोगुणमयश्च सः।
रजोगुणमयस्त्रेतायुगो तो वायुरग्रगः॥
धमन्यां मध्यगः श्लेष्मा पित्तमंते तदा स्थितं।
युगो वै द्वापरो मिश्रस्ततो नाड्यास्त्रिधास्ति हि॥

व्यवस्थाऽहं प्रवक्ष्यामि तां क्रमेण वरानने।
वात-पित्तकफश्चादौ मध्ये पित्तं कफो मरुत्॥
कफः पित्तं च वातश्च युगस्यांते क्रमात्स्थिताः।
पित्त नाड़ी पतिश्चाहं त्रिगुणात्मातमोऽधिकः॥
तमसस्तु रजो न्यूनं सत्वमल्पं ततः कलौः।
अतः पित्तप्रधानत्वात्पित्तमग्रे भविष्यति॥
वायुर्मध्ये कफश्चांते धरायामेव निश्चितं।
कलेरंते धमन्यांतु सन्निपातो भविष्यति॥

तदा लोका मरिष्यंति कालेनाल्पेन पार्वतिः॥

इस प्रकार "शिवसंहिता" नामक ग्रंथके आधारपर युगरूप कालके कारण स्थानभेदोंमें भिन्नता बतलायी है। इसलिये यह विषय भी विचार योग्य है कि क्या युग (काल) भेदके कारण नाड़ीमें स्थानभेद होना संभव और सत्य है।

शार्ङ्गधर एक प्राचीन ग्रंथ प्रतीत होता है। उसमें केवल नाड़ीकी गतिका ही उल्लेख है। शार्ङ्गधर स्थानभेदको न मानकर केवल गति द्वारा ही नाड़ी परीक्षाका वर्णन करता है। नाड़ीदर्पणकारका भी यही मत है कि नाड़ीकी गतियोंमें किसी प्रकारका कुछ भी विरोध नहीं है—इसलिये गति ही मान्य है; और स्थानभेद असत्य है। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि वात, पित्तादि दोषोंके स्थान किसी ऐसे वैसे साधारण वैद्यके नियत किये हुए नहीं हैं। बल्कि महामुनि कणाद, भावमिश्र, त्रिमल्ल भट्ट, जनार्दन भट्टादि कतिपय सर्वमान्य प्रतिष्ठित भिषग्वरोंने स्थानभेदको मान्य किया है। यदि वातादि दोषोंका स्थान निर्देश कल्पना मात्र और वृथा ही होता तो क्यों अनेक वैद्यवरोंने उसको मान्य किया और स्वरचित ग्रंथोंमें लिखा? यह संशय कोटिमें है।

और यह बात भी विचार योग्य है कि वात-पित्त-कफका क्रम तो बहु सम्मतिसे मान्य हुआ है। दूसरे मत (पित्त-कफ-वात या पित्त-वात-कफ) पर बहुत कम वैद्योंकी सम्मति है तो ऐसी अवस्थामें इन तीनों मतोंमेंसे कौन सा मत सत्य और ग्राह्य है।

इसका विचार यथार्थ वैद्यक रहस्योंके मर्मी वैद्यराजोंको अवश्य करने योग्य है।

"क्या स्थानभेदके मतान्तर देशभेदके कारण तो नहीं हैं। यथा—

क्वचिद्ग्रंथानुसंधानाद्देशकाल विभागतः।
क्वचित्प्रकरणाच्चापि नाड़ीज्ञानं भवेदपि॥

यदि देशभेदके कारण मतभेद हुआ हो तो उसका समाधान विस्तारपूर्वक सद्वैद्योंको करके सर्वसाधारणके भ्रमको निवारण करना चाहिये।

आयुर्वेदके मूलभूत ग्रंथ चरक, सुश्रुत, वाग्भट्टमें नाड़ी परीक्षाका लेश मात्र वर्णन नहीं है-जिससे यह शंका उत्पन्न होती है कि

क्या नाड़ी परीक्षाकी पद्धति अर्वाचीन है।

दृढ़ आशा और पूर्ण विश्वास है कि आयुर्वेदोद्धारक वैद्य शिरोमणि महाशयगण सम्मेलनमें इस विषय पर खूब विचार करेंगे और सत्य सिद्धांतका मथन करके उसे सर्वसाधारणके लाभार्थ प्रकाशित करनेकी कृपा करेंगे। ताकि नाड़ी विज्ञान विषयक त्रुटियां दूर हो जावें।

नाड़ी ज्ञान जैसे गंभीर और कठिन विषयपर विचार तथा निर्णयके लिये सम्मेलनसे अच्छा और कोई सुअवसर प्राप्त नहीं हो सकता है। इस कारण कृपया इसका निर्णय अवश्य ही करेंगे।

अब मैं आयुर्वेद सम्मेलनस्थ सभापति महोदय तथा सम्पूर्ण वैद्यराजोंकी सेवामें हार्दिक धन्यवाद—सविनय समर्पण करता हुआ इस लेखको समाप्त करता हूं; और जो कुछ भूल चूक तथा अयोग्य बात लिखनेमें आयी हो उनकी क्षमाकी प्रार्थना करता हूं।

दशमूल।

(श्रीयुक्त मनोहरलाल वैद्य विन्ध्यगिरि औषधालय, मिर्जापुर)

दशमूल क्या है, इसके विषयमें कानपुरके चतुर्थ वैद्यक सम्मेलनके वैद्योंने विज्ञप्ति द्वारा भारतके वैद्योंसे निबन्ध लिखनेका अनुरोध किया है। मैं समझता हूं कि दशमूलके गुणोंसे तो सभी विज्ञ जन परिचित हैं। इस समय उसके सम्पूर्ण अङ्गोंके प्राप्त होनेके लिये स्थानोंका जानना आवश्यक है और समयके अनुसार हम उनके लिये किस सांकेतिक नामका प्रयोग करें जिससे कि वे हमको सुगमतासे प्राप्त हो सकें।

शालपर्णी पृष्टपर्णी बृहती द्वय गोक्षुरैः।
विल्वाग्नि मंथ स्योनाक काश्मरी पाटला युतैः।
दशमूल मिति ख्यातः कथितं तज्जलं पिवेत्॥

शालपर्णी, पृष्टपर्णी, छोटी भटकटैया, बड़ी भटकटैया, (जिसे बनभटा भी कहते हैं) गोखुरू, विल्व, अग्निमन्थ, (अरणी) स्योनाक (सोनापाढ़ी) काश्मरी (गंभारी तथा खँभार) पाटला, येही

औषधियां दशमूल, नामसे ख्यात हैं। बड़े वृक्षके जड़की अंतरछाली तथा छोटे वृक्षकी भी जड़को, और उनके अभावमें सर्वांग डाले जाते हैं।

गुण—इसको क्वाथ करके तथा अर्क खींचकर रोगीको देते हैं। मात्रा काढ़ेमें पकानेके लिये छः माशेसे भी कम रोगीकी प्रकृतिके अनुसार होनी चाहिये। इसके खिंचे हुए अर्ककी मात्रा आधी छटांक तक दोनों समय देनी चाहिये। इसका चूर्ण करके भी रत्ती दो रत्ती मात्रा मधुयुक्त, रोगियोंको देते हैं। इसके काढ़ेमें पिप्पली-का चूर्ण और मधु डालकर सूतिका आदि रोगोंमें वैद्यगण दिया करते हैं।

इस औषधिके देनेसे ज्वरजनित घोर सूतिका रोगकी शान्ति होती है। शूल, पीड़ा, विशेष पसीनेका आना, सन्निपात ज्वर, खांसी, स्वांस, पार्श्व पीड़ा, कफ-वात जनित सम्पूर्ण रोग इससे अच्छे हो जाते हैं। इसके अरिष्टमें बहुत ही उग्र गुण मैंने पाया है। जिससे कि प्रमेहादि कास स्वांस रोग निश्चय छूट जाते हैं। इसकी विधि शार्ङ्गधरमें स्पष्ट है। शास्त्रकारने इसके प्रथमकी पांच औष-धियोंकी जड़को पंचमूल और दसोंके सहित दशमूल कहा है।

दशमूलका पाठ भैषज्यरत्नावलीमें यों है। परन्तु वैद्योंने पूर्व कथित दशमूलको ही दशमूल माना है जिसके विषयमें हमको यहां कुछ कहना है।

> शालपर्णी पृष्ठपर्णी वृहती द्वय गोक्षुरम् ,
> दासी प्रसारणी विश्वा गुडूची मुस्तकं तथा।
> निहन्ति सूतिका रोगं ज्वरं दाह समन्वितम् ॥
>
> ॥ भैषज्य रत्नावली ॥

शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, दोनों वृहती (भटकटैया) गोखरू, नीले फूलकी कटसरैया, गन्ध प्रसारिणी, सोंठ, गुडूची, नागरमोथा, इनका काढ़ा पूर्वोक्त रीतसे देनेपर सूतिका आदि सम्पूर्ण रोग अच्छे हो जाते हैं।

अस्तु, संस्कृत भाषा जिस समय भारतकी एक मात्र मातृभाषा थी, उसी समयके अनुसार ये नाम ऋषियोंके रखे तथा बतलाये

हुए हैं। उस समय प्रायः हमलोगोंको शास्त्रानुसार इन्हीं नामोंसे ये औषधियां प्राप्त होती थीं। परन्तु जबसे विदेशियोंने इस भारत वसुन्धरापर पदार्पण कर अपना प्रभाव जमाया तभीसे इसके साथ साथ अनेक रत्न जिनसे कि हमलोग उन्नतिशील तथा भारतवासी कहे जाने योग्य होते थे, विलुप्त हो गये। यही कारण है कि आज अन्य देशवासी हमको अबोध निर्जीव दरिद्र बतलाते हैं।

हर्षका विषय है कि हमारी न्यायशीला गवर्नमेण्टके शासन-कालमें हमलोगोंके सुखके लिये बहुत कुछ प्रबन्ध हुआ है। जिससे बहुत कुछ कठिन कार्य्योंमें परिवर्त्तन हो चला है, और अपने कार्य्योंमें परिणत करनेके लिये उन उपायोंके ढूंढ़नेमें निकल पड़े हैं, जिनसे कि हमको लाभ हो जैसा कि चतुर्थ वैद्यक सम्मेलन कानपूर इत्यादि।

आज इस देशके बहुत स्थानोंमें दशमूलके होते हुए भी हम उसे नहीं पा सकते। इसका कारण संस्कृत विद्याका लोप हो जाना ही जान पड़ता है। क्योंकि जब इस विद्याकी इस देशमें चारों ओरसे धूम थी और राजा प्रजा सभी विद्याशील संस्कृत ज्ञाता होते थे तथा गुरुकुल, पाठशाला साधु महात्माओंके निरीक्षणमें जङ्गल और पहाड़ोंमें ही होते थे और वे महात्मा वहांकी औषधियां-को अच्छी तरह जानते भी थे जिनका कि नाम प्रायः वे संस्कृतमें ही लिया करते थे। तो इस दशामें सम्पूर्ण पहाड़ी तथा ग्रामीण भी संस्कृतके ज्ञाता होते थे। अब वे बातें नहीं हैं। इसलिये अब हमको इस समयके अनुसार उनके पाने तथा पता लगानेके संकेतोंको जानना चाहिये; जिससे कि ये औषधियां हमको सुगमतासे प्राप्त हो सकें।

मैंने जो कुछ पता लगाया है, तथा अपने आचार्यसे समझा और अनुभव किया है उसी प्रणालीके अनुसार उन औषधियोंका यहांपर उल्लेख करता हूं। आशा है कि आप इसके विषयमें और भी कुछ विशेष पता लगानेकी चेष्टा करेंगे।

शालपर्णी—इसके पेड़की पत्ती शाल (साखू) के पत्तेके समान तीन तीन एकमें लगी हुई कुछ लम्बी होती है। इनके ऊपर छोटे

छोटे कुछ फल बबूलकी सिँगरीके समान होते हैं। इसका नाम शास्त्रोंमें स्थिरा है। इसकी जड़ इतनी मज़बूत होती है कि उखाड़नेसे नहीं उखड़ती और प्रायः टूट जाती है। दूसरी बात यह है कि जहां यह होती है वहां सर्वदा वर्षाऋतुसे लेकर पूस माघ तक रहती है। प्रायः बाहरके बागोंके भीटोंपर तथा यहांके पहाड़ोंपर पायी जाती हैं और सरिवन नामसे प्रसिद्ध है। यह दो ढाई फीट तक ऊँची होती है।

पृष्ठपर्णी—इसकी पत्ती चित्र विचित्र रंगकी कुछ पतली लम्बी और गोल करीब करीब शालपर्णीकी तरह होती है। इसके मस्तक कुछ घुमा शृगालके पुच्छ जैसा होता है। दरभंगा रियासतमें इसे 'नेगड़ा' कहते हैं।

इन दोनों औषधियोंमें से एकके अभावमें प्रायः वैद्य दूसरेको ही दूनी करके डालते हैं। कोई अन्तर नहीं पड़ता। परन्तु दोनों अंगों (शालपर्णी और पृष्ठपर्णी) का होना यथेष्ट है। यह औषधि बागोंमें तथा भीटोंपर होती है। माड़ा और विजयपुरकी रियासतोंमें पहाड़ोंपर यह बहुतायतसे पायी जाती है और पिठवन नामसे प्रसिद्ध है।

अग्निमन्थ—अरनी, यहां पर जंगलोंमें यह एल नामसे प्रसिद्ध है। इसकी सूखी लकड़ीको आपसमें रगड़कर प्रायः पहाड़ी आदमी आग निकालते हैं। ऋषि लोग भी पहले इसी लकड़ीसे यज्ञाग्नि उत्पन्न किया करते थे। इसका वृक्ष कांटेदार छोटी पत्ती वाला अमरूदके पेड़से कुछ बड़ा होता है और प्रायः आग प्रकट करने वाली लकड़ी कहकर योंही संकेत द्वारा हम इसका पता लगा सकते हैं। छोटी अरनी जो कि इसके अभावमें वैद्यगण डालते हैं जिसे कि प्रायः सभी लोग 'टेकारि' नामसे जानते हैं। सभी शहरोंके बाहर खेतों और बागोंमें होती है।

स्योनाक—(सोनापाढ़ी), इसका वृक्ष दो तीन पुरसा ऊँचा होता है। इसे यहांके जंगली पापड़ तथा अन्य नामोंसे पुकारते हैं। इसकी जड़के भीतरकी छाली कुछ पीली परतदार निकलती है। बाज़ोंमें पीलापन विशेष होता है। अनुमान होता है कि इसी कारण आचार्योंने इसका नाम सोनापाढ़ी रक्खा है। इसकी पत्ती

पाकरकी पत्तीके समान कुछ बड़ी और चौड़ी तथा श्यामतायुक्त होती है। इसकी फली तलवार जैसे तीन अंगुल चौड़ाईमें चिपटा और एक हाथतक बड़ी और टेढ़ी होती है। इसके फलका आकार बतलानेसे यह शीघ्र पहचाना जाता है। उस फलके भीतर पतली चमड़े की झिल्ली जैसी एक पतली वस्तु ढकी रहती है और उसीके भीतर बीज होता है जो इमलीके चियाँ जैसा और पतला दिखाई पड़ता है। इसके एक बीजको दो ढाई दाने गोल मिर्चके साथ घोट कर दूधमें लड़कोंके पसई रोगमें देते हैं। लम्बे फल तो अमि-लतास तथा इन्द्रयवके भी होते हैं किन्तु ये गोल और कुछ छोटे होते हैं। स्योनाक का फल चिपटा और एक हाथ लम्बा तलवारके आकार जैसा होता है। इसके बीजको पश्चिममें उल्लूके फूल कहते हैं; क्योंकि उसका आकार भी उल्लूके मुखके सदृश होता है। बड़े स्योनाकका फल तथा बीज बहुत बड़ा और उसका वृक्ष भी कुछ बड़ा होता है। इसके फलसे लोग कपड़ा बुननेका काम लेते हैं। गुणमें बड़े स्योनाकसे छोटा स्योनाक श्रेष्ठ है।

गम्भारि (खम्भारि)—इसका वृक्ष बड़ा और बहुत मोटा होता है। पत्ती इसकी शहतूतकी पत्तीसे कुछ मिलती जुलती है। फल इसके छोटे और गोल होते हैं। हमारे यहां इसके काष्ठका ढोल बनकर बाज़ारमें बिकने आता है। विजयसाल और सलईके भी ढोल बनते हैं; तो भी यहांके जंगल वालोंसे पूछनेपर पता लग जाता है क्योंकि ढोल बनने वाले वृक्षोंमें खम्भार ख्यात है।

पाटला—इसके विषयमें कोई कोई वैद्य कहते हैं कि अमरूदके आकारके समान इसकी पत्ती और वृक्ष बहुत बड़ा होता है। यह श्वेत और लाल पुष्पके भेदसे दो प्रकारका होता है। केवल श्वेत पुष्प वाला पाटला औषधिमें छोड़ा जाता है। मेरे गुरु महाराजने मुझे इस प्रकार बतलाया था और कई वैद्योंने इसका समर्थन भी किया है:—

इसके फल इमली जैसे बड़े गोल उँगलियोंके समान मोटे गाँठड़ (गिरहदार) होते हैं। पुष्प श्वेत और पेड छतनार होता है। इसके फलको काट काट कर प्रायः जंगलके मनुष्य अधकपारी (अस्त्रविशेष) की गुरिया बनाकर बाजारमें बेंच जाते हैं। अतः

अधकपारीकी गुरिया वाला पेड़ कहनेसे हमारे यहां यह प्राप्त हो सकता है।

लाल फूल वाला पाटला जो कि डिठोरीके नामसे प्रसिद्ध है मिरजापुरके पहाड़ों पर होता है।

मिरजापुरके जिलेमें श्रीमान महाराज विजयपुर तथा अन्य अन्य रियासतों और जंगलोंमें तथा मांड़ा महाराजकी रियासतमें भी, ये औषधियां बहुतायतसे हैं। संकेत द्वारा उनका नाम बतलानेसे वहां वाले उसे ला सकते हैं।

कपूरी—(अनन्तमूल) इसे शास्त्रोंमें श्यामा सारिवा भी कहते हैं। हमारे गुरु जी रक्तादि विकारोंपर सारिवा कहकर इसीका प्रयोग करते थे। यह लता जामुनके समान पत्ती वाली कुछ सुगन्धियुक्त होती है। इस शहरमें प्रायः पहाड़से बिकनेके लिये आया करती है।

तेलियाकन्द—यह एक प्रकारका विष है, जिसके वृक्षके नीचे की मिट्टी तेलसे आर्द्र जैसी मालूम पड़ती है। हाथ सवा हाथका वृक्ष और नीचे उसके कन्द होता है। यह प्रायः चित्रकूटके पहाड़ पर मिलती है और वहांके पर्वत निवासी इसे जानते हैं।

प्लेग क्या है?

(श्रीयुक्त मनोहरलाल रस्तोगी वैद्य विन्ध्यगिरि औषधालय, मिर्जापुर)

कुछ काल हुआ कि मैं इस विषय पर कुछ लिखना चाहता था; क्योंकि आज दिन भारतवर्ष इस रोगसे जैसा सताया जा रहा है वह किसीसे अविदित नहीं है। डाक्टरोंने तो यह निश्चय कर लिया है कि यह रोग किट्टों (germs) से होता है। मैं समझता हूं कि उनका सिद्धान्त वैद्योंको स्वीकार करना पड़ेगा। डाक्टरों का कथन है कि एक आलपीनकी नोक पर साठ कीड़े तक अँट सकते हैं। डाक्टरी रीति से इस रोगका नाम प्लेग रखा गया है; किन्तु वैद्यकशास्त्रके अनुसार इस रोगका क्या नाम होना चाहिये, अभी तक निश्चय

नहीं हुआ है। कोई सन्धिकादि सन्निपात, कोई अग्नि रोहिणी, कोई विष सम्बन्धी तथा कोई नवीन रोग कहकर इसे जानते हैं। अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार वैद्य लोग इसकी चिकित्सा भी करते हैं; किन्तु इसकी असफलताकी ओर कानपुर वैद्यकसम्मेलनका ध्यान आकर्षित हुआ है; उसने अपने निबन्धोंकी सूचीमें इस विषयका भी उल्लेख किया है। अस्तु उक्त विषय पर आज हम कुछ कहनेका साहस करते हैं। आशा है कि उपस्थित वैद्यगण हमारे लघु विचार पर स्वयम् विचार करनेकी कृपा करेंगे; और अपनी अपनी उचित सम्मति प्रदान कर मुझे अनुग्रहीत करेंगे।

(१) जबतक उन किट्टों तथा मूषकोंको जोकि इस रोगके कारण कहे गये हैं—शास्त्रोक्त प्रमाणोंसे सिद्ध न कर दिया जाय तबतक प्लेग सन्निपातिक ज्वर कैसे कहा जा सकता है ?

(२) जिनको न तो कोई गांठ है और न ज्वर ही है और जो तमाम दिन भले चंगे थे क्या कारण है कि वे सोये हुए ही मृत्युकी गोदमें देखे जाते हैं ? ऐसी दशामें किस प्रकार प्लेगको अग्निरोहिणी तथा सन्निपातिक ज्वर कह सकते हैं।

(३) जब कि पुराणादि इतिहासोंमें और डाक्टर महानुभावोंके लेखोंमें इसके अगले समयसे होनेकी बात पायी जाती है तब यह रोग नवीन कैसे कहा जा सकता है ?

प्रश्न यह उठता है कि इस फैलनेवाले रोगको हम अपने शास्त्रों-के अनुसार क्या कह सकते हैं ?

प्रत्यक्ष देखकर अनुमान होता है कि यह प्लेग रोग वैद्यकशास्त्रके अनुसार विसर्प (जोकि विषजन्य विसर्प तथा ग्रन्थि विसर्प कहा जा सकता है) है चरकाचार्यजीका मत है कि:—

विविधं सर्पति यतो विसर्पस्तेन स स्मृतः।
परिसर्पोऽथवा नाम्ना सर्वतः परिसर्पणात्॥

चरक अ० ११ चि० स्था०

यह रोग शरीरमें अनेक प्रकारसे फैलने पर विसर्प तथा सम्पूर्ण चारो ओर फैलनेसे परिसर्प भी कहा जाता है। कोई आचार्य यों कहते हैं कि अन्तराश्रित और बहिराश्रितमें एक आश्रितके होनेवाले-को विसर्प दोनों आश्रितके होनेवालेको परिसर्प कहते हैं।

'सर्वतः' सर्वदेशीय शब्द है अतएव शरीर तथा देश दोनोंका ग्रहण करना अनुचित नहीं है और इसके सर्वत्र फैलनेसे यह अवश्य विसर्प रोग कहा जा सकता है। अब यहां यह देखना चाहिये कि शास्त्रोंमें अनेक कारणोंके होते हुए इस विसर्पकी उत्पत्ति किट्टों तथा मूषकोंसे प्रमाणित होती है या नहीं। देखनेसे मालूम होता है कि इस विसर्प रोगकी उत्पत्ति किट्टों और मूषकोंसे भी है यथाः—

गात्रं रक्तं सितं कृष्णं श्यामं वा पिडिकान्वितम्।
सकण्डूदाह विसर्पा किस्यात् कोपनं तथा।
कीटदूषी विषैर्दंष्ट्रे लिङ्गं प्राणहरं शृणु॥

च० अ० २५ चि०

शरीरका सफेद लाल तथा काला पड़ जाना, पिडिकाओंका होना, जलन, विसर्प पकना और सड़ाहटका होना इत्यादि ये सब लक्षण होते हैं। ये किट्टज दूषी विष होते हैं और प्राणोंको हरनेवाले हैं। इसकी व्याख्या सुनो।

अब इससे यह प्रमाणित होता है कि विसर्पकी उत्पत्ति कीड़ोंसे भी है। इसी प्रकार मूषकोंसे भी विसर्पका होना महर्षि सुश्रुत द्वारा यों सिद्ध होता हैः—

शुक्रं पतति यत्रैषां शुक्रदृष्टैः स्पृशन्ति वा।
नखदन्तादिभिस्तस्मिन् गात्रे रक्तं प्रदुष्यति॥
जायन्ते ग्रन्थयः शोफा कर्णिका मण्डलानि च।
पिडिको पचयश्चोग्रा विसर्पाः किटभानि च॥
पर्वभेदो रुजस्तीव्रा ज्वरो मूर्च्छा च दारुणा।
दौर्वल्यमरुचिश्वासो वेपथुर्लोमहर्षणम्॥

सुश्रुत कल्पस्थान अ० ६

इन मूषकोंका वीर्य जहां गिरता है वहां यदि उससे रगड़ा लगे हुए किसी पदार्थका स्पर्श हो जाय अथवा नख दांत और आदि शब्दसे मल तथा मूत्र जिसके शरीरसे स्पर्श हो जाय वहीं उसके शरीरमें रक्त दूषित होकर ग्रन्थि, कर्णिका (किनारीदार पाकाभेद तथा चिन्ह) मंडल (चकत्ता) दारुण फुड़िया, विसर्प (दारुण फुड़ियोंसे युक्त विसर्प) किटभ (कुष्ठ भेद) इत्यादि उत्पन्न होते हैं।

पोर पोरमें पीड़ा, कठिन वेदना युक्त ज्वर, दारुण मूर्च्छा, कमज़ोरी, अरुचि, श्वास, कम्प और रोम हर्ष होता है।

रक्तके दूषित होनेका कारण अनेक कारणोंके होने पर भी एक मूषकोंके वीर्यसे ही कहा जाता है। अब यहां हमको यह दिखलाना चाहिये कि विसर्प रोगका अधिष्ठान क्या है।

रक्तं लसीकात्वङ्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः।
विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्तधातवः॥

चरक चि० स्था० ११ अ०

रक्त, लसीका (मांस अंशिक जल) त्वचा और मांस ये चारों दूष्य और कफ वात पित्त तीनों दोष, इन सातोंसे ही विसर्पकी उत्पत्ति है अर्थात् ये ही सातों धातु विसर्पके ठहरनेके स्थान हैं। डाक्टरोंका भी यही विचार सुननेमें आता है कि दूषित रक्तवाले आदमियों पर प्लेग आक्रमण करता है।

प्रमाणसे यह स्पष्ट होता है कि मूषकोंके वीर्यसे जब विकृत रक्तादि धातु स्पर्शित हो जाता है तभी दोष भी कुपित होकर विसर्प प्रकट करते हैं। इससे यह मालूम होता है कि मूषकोंका दंष्ट्राविष प्रधान नहीं है। उनकी लार तथा वीर्यके ही स्पर्श होनेसे विषत्वकी प्रधानता होती है। जैसा कि जङ्गम विषके अधिष्ठानोंको देखनेसे विदित होता है। जिस प्रकार दिव्यादि सर्पोंके फुफकारमें, साधारण सर्पोंके डाढ़ोंमें, कुत्ता और बिल्ली इत्यादिके नख और दांतोंमें और मूषकके शुक्रमें विषकी प्रधानता कही गयी है। सुश्रुत कल्पस्थानके तीसरे अध्यायमें देखिये।

अब यहां यह शंका उपस्थित होती है कि इनके वीर्य, लार, मलमूत्र तो सभी समय पात हुआ करते हैं। प्रायः अन्नके ढेरोंमें इनकी बीट पायी जाती है। वही अन्न लोगोंके व्यवहारमें आता है तौभी किसीकी कुछ हानि नहीं होती तो यह कैसे कहा जा सकता है कि इनके मलमूत्र और वीर्यमें विषकी प्रधानता है।

इसका प्रत्यक्ष अनुमानसे ही किया जा सकता है। जब कीटाणु मूषकोंमें प्रवेश करते हैं तब वे पीड़ित होकर गांठोंके सहित ज्वरसे

मूर्छित हो जाते हैं। तभी वीर्य तथा लारके गिरनेकी सम्भावना होती है अन्यथा बिना किसी कारणके तथा दोके संयोगके बिना वीर्यका पात होना और मूर्छा बिना लारका गिरना नहीं हो सकता। प्रायः देखा गया है कि मनुष्यको ज्वर चढ़ा और बेहोशीमें उनका वीर्यपात हो गया; अतः ये मूसे बड़े कामी और गरमी न सहनेवाले होते हैं। ऐसी दशामें इनके वीर्य और लारका गिरना सम्भव है। अतएव इनके वीर्य और लारके स्पर्शसे ही विष व्यापता है। इन बातोंको आप प्लेगग्रस्त मनुष्य पर घटाइये। ग्रन्थि विसर्पमें जैसे कि महर्षि चरकाचार्यजीने अपने ग्रन्थके चिकित्सास्थानके ग्यारहवें अध्यायमें लिखा है, पूरा पूरा घट जाता है। ग्रन्थि विसर्प रोगियों-को जिस प्रकार अन्य उपद्रव हो जाते हैं उसी प्रकार प्रमेह, वमन, मूर्छा, निद्रा इत्यादि उक्त आचार्यके मतसे प्रकट है। इससे यह प्रमाणित होता है कि उन मूषकोंको भी किट्टों द्वारा ग्रन्थिविसर्प होकर वमन प्रमेह आदि उपद्रव हो जाते हैं, जिससे वीर्यका पात होना और लारका गिरना ठीक ठीक घटता है। इसमें 'टन्द्र' एक बीमारी और भी आ पड़ी है। हम समझते हैं कि यह भी प्लेगहीका एक अङ्ग है; और पित्त वात जनित विसर्पमें जिसे अग्निविसर्प भी कहते हैं यह बात ठीक ठीक चरितार्थ होती है; अर्थात् रोगी सोया ही रह जाता है और जगानेसे नहीं जागता। च० चि० अ० ११

दूसरी बात यह भी देखी जाती है कि सुश्रुताचार्यने अट्टारह प्रकारके मूषकोंको सविष प्रमाणित किया है और वह प्लेगके रोगियोंमें यथेष्ठ घटता है। जैसे पुत्रक नामक मूषकके विषसे चूहो जैसी गांठका होना। किसी किसी रोगीकी गांठ स्पर्श कर मैंने देखा है और ठीक चूहीके आकार जैसा पाया है। कपिल तथा कोकिल नामक मूषकके विषसे ज्वर तथा ग्रन्थिका होना, अरुण नामक मूषक-के विषसे वायु, महाकृष्ण नामक मूषकके विषसे पित्त, श्वेत मूषकके विषसे कफ, महा कपिल मूषकके विषसे रुधिर कुपित होता है तथा कपोत नामक मूषकके विषसे चारो दोष कुपित होते हैं। इनके ही कारण सान्निपातिक विसर्प होता है जिसके अन्तर्गत वैद्योंने विष-जन्य विसर्प माना है। अब आप इन प्रमाणोंसे प्रत्यक्ष देखकर युक्ति द्वारा अनुमान कर सकते हैं कि यह प्लेग अवश्यमेव विसर्प ही है।

डाकृरोंका कहना है कि प्लेगी कीड़ोंका स्थान जमीनके नीचे दो ढाई फीट भीतर रहता है। तो यह देखना चाहिये कि विसर्प तथा प्लेगके फैलानेवाले वही कीड़े हैं या दूसरे ?

चरक महर्षि इन कीड़ोंकी उत्पत्तिके विषयमें यों कहते हैं—

सर्पाणां विडमूत्रा कीटा स्युः किट्टजा इति।
दूषी विषाः प्राणहराः इति संक्षेपतो मता ॥

चरक चि० स्था० अ० २५

सर्पोंके मल और मूत्रसे उत्पन्न हुए कीड़े किट्टज होते हैं। ये संक्षेपसे दूषी विष और प्राणनाशक होते हैं। इनके वाक्योंकी पुष्टता महर्षि सुश्रुताचार्यने भी की है—

सर्पाणां शुक्रविडमूत्र शवपूत्यंड सम्भवाः।
वायव्य अग्न्यंबु प्रकृतयः कीटास्तु विविधाः स्मृताः ॥
सर्पदोष प्रकृतिभिर्युक्ताश्चा परिणामतः।
कीटत्वेपि सुघोरास्ते सर्वएव चतुर्विधाः ॥

—सु० कल्प० स्था०।

इस प्रमाणसे डाकृरोंका भी मत मिलता है। सर्पादिकोंका विल प्रायः भूमिके दो ढाई फुट नीचे होता है। इनसे उत्पन्न हुए कोई अवश्य ही विलवाले मूषकों पर आक्रमण करते हैं जैसा कि सर्प स्वाभाविक मूषोंको पकड़ लिया करते हैं। यह बीमारी प्रायः सामुद्रिक प्रान्तोंसे ही आयी हुई है; जैसे हांगकाण, वाम्बे इत्यादि। समुद्रके तट बड़े बड़े दीर्घकाय सर्प होते हैं। क्या आश्चर्य है कि उन्हींके मलमूत्रसे उत्पन्न कीड़े संसर्ग अथवा वायु द्वारा दूर दूर तक फैल गये हों और यहांके सर्पोंके मलमूत्रज कीड़ोंको अपने अनुरूप सविष कर देते हों अथवा स्वयम् ही विष फैलाते हों। इन किट्टोंके विषयमें सुश्रुताचार्यजीके एक वचनसे और भी विश्वास दृढ़ होता है—

उष्णवर्ज्यो विधिः कार्यो विषार्त्तानां विजानता।
मुक्त्वा कीट विषं तद्धि शीतेनाभि प्रवर्द्धते ॥

—सु० कल्प० स्था० अ० ८।

विज्ञ वैद्यको उचित है कि विष पीड़ितोंकी चिकित्सा उष्णता रहित तथा शीतल क्रियासे करें; किन्तु कीट विषमें शीतल क्रिया कभी न करना चाहिये; क्योंकि यह कीट विष शीतसे बढ़ता है। क्या अनुमान और प्रत्यक्ष द्वारा इन प्रमाणोंसे यह नहीं समझा जा सकता कि उक्त कीड़े प्लेग और विसर्पके कीड़े हैं ?

महर्षियोंने इन कीड़ोंसे रक्षा पानेके लिये शीतल उपचार मना किया है; क्योंकि ये शीतसे बढ़ते हैं। जिस तरह कि जाड़ेमें तथा शीत प्रधान देशोंमें प्लेग होता भी है। डाक्टरोंका सिद्धान्त भी ठीक वैसा ही है कि अपने शरीरको प्लेगके समयमें गरम कपड़ों तथा मोजों और जूतोंसे ढके रहना चाहिये।

एक प्लेग पीड़ित रोगीकी दशा जोकि पहले शोचनीय थी; परन्तु पीछे बहुत कुछ सुधर चली थी, एकाएक निद्राके न आनेके कारण एक वृद्ध वैद्यके कहनेसे उसके मस्तक पर चमेलीका तेल दाबा गया, जिससे क्षणेक उसे सुख मिला; किन्तु आधी रात होते होते उसे शीतने घेर लिया और प्रातः होते होते वह मर गयी। इससे यह अनुमान होता है कि यदि उसकी शीतल क्रिया न की जाती तो वह निश्चय आराम हो जाती। इससे भी यह सिद्ध होता है कि ये कीड़े तथा किट्टज विष शीतल उपचारसे और भी बढ़ते हैं।

इन उपरोक्त प्रमाणोंसे यह स्पष्ट हुआ कि यह 'प्लेग' ग्रन्थि विसर्प ही है जोकि पहले मूषोंको होकर मनुष्योंमें फैलता है।

इस विषयमें हमारे पास और भी अनेक प्रमाण सञ्चित हैं; किन्तु लेखके विस्तार भयसे हमने यहां स्वल्प प्रमाण दिये हैं। आशा है कि विज्ञ वैद्यगण इसे दूर तक समझ सकते हैं। अब हमको यह भी यहां दिखाना चाहिये कि इस रोगकी चिकित्सा करनेमें कहां तक सफलता प्राप्त हो सकती है और इस बीमारीकी चिकित्सा विसर्प-की चिकित्सासे कहां तक मिलती जुलती है।

ग्रन्थि विसर्पकी चिकित्साके लिये चरकाचार्यजी यों कहते हैं, इसकी चिकित्सा उस समय आरम्भ करना चाहिये जबतक कोई उपद्रव न खड़े हुए हों। उपद्रवोंके होने पर चिकित्सा करना व्यर्थ

है। सान्निपातिक विसर्प सर्वथा असाध्य कहा गया है। क्योंकि यह सर्वधात्वानुसारी और शीघ्रकारी है। इसलिये इसकी चिकित्सा विरुद्ध रूपसे करनी पड़ती है। च० चि० स्था० अ० ११।

अब आप विचार सकते हैं कि प्लेग रोगीकी चिकित्सा यदि आरम्भमें की जाय तो अवश्य लाभ होता है; और उपद्रवों तथा रोगके बहुत बढ़ जाने पर सम्पूर्ण चिकित्सा निष्फल होती है। यही डाक्टर महाशयोंका भी मन्तव्य है। इस प्रमाणसे भी यह ग्रन्थि विसर्प कहा जा सकता है।

लङ्घनोल्लेखने शस्ते तिक्तकानाञ्च सेवनम्।
कफस्थान गते सामे रुक्ष शीतैः प्रलेपयेत्॥
पित्तस्थाने गतेऽप्येतत्सामे कुर्याच्चिकित्सकम्।
शोणितस्यावसेकश्च विरेकश्च विशेषतः॥
वातोल्वणे तिक्तघृतं पैत्तिके च प्रशस्यते।
लघुदोषे महादोषे पैत्तिके स्याद्विरेचनम्॥
—च० चि० अ० ११।

विसर्प रोगीके आमयुक्त दोषके कफस्थानमें जाने पर लङ्घन (पाचन तथा संशोधन योग द्वारा) वमन और तिक्त द्रव्योंका सेवन हितकर होता है। लेपनमें रुक्ष और शीतल औषधियोंका प्रयोग करे। उस आम संयुक्त दोषके पित्ताशयमें जाने पर पूर्वोक्त क्रमका अवलम्बन करना उचित है। इस रोगमें रक्त निकलवाना तथा दस्त कराना परम कर्तव्य है। वाताधिकार विसर्पमें तथा अल्प दोषवाले पित्तज विसर्पमें तिक्तघृत (तिक्त रस प्रधान औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ) हित है। इस प्रकार महादोषोंसे युक्त पैत्तिक विसर्पमें विरेचन बहुत ही श्रेयस्कर होता है। इसी तरह—

मदनं मधुकं निम्बं वत्सकस्य फलानि च।
वमनं संप्रदातव्यं वीसर्पे कफ पित्तजे॥ इत्यादि
—च० चि० स्था० अ० ११।

कफ-पित्तजनित विसर्पमें मैनफल, मुलहठी, नीमपत्र और इन्द्र-यवको सम भागोंमें लेकर (क्वाथ कर) वमनके लिये रोगीको

पिलावे। इस क्रियाके अवलम्बनसे भी प्लेग रोगी आराम हुए हैं। अतः प्लेगको विसर्पके नामसे प्रख्यात करना अनुचित नहीं है।

मैंने अपने स्वर्गीय वृद्ध गुरु लाला मनोहरदास खत्रीको कई प्लेग रोगियोंको वमन कराते देखा है। वह इस क्रियाकी बड़ी प्रशंसा करते थे। प्रायः वह मैनफलहीसे वमन कराकर पीछे कोई ज्वरघ्न काष्ठ औषध देकर पथ्य भी देते थे। इसमें लङ्घनका तात्पर्य बिलकुल उपवाससे नहीं है। क्योंकि ऐसा देखा गया है कि केवल जलके आधार पर प्लेग रोगीको रखकर औषधि करनेसे लाभके बदले हानि होती है। इस कारण विषज विसर्प (प्लेग) वाले रोगीको कुछ पथ्य हल्का जैसा कि शास्त्रकारोंकी आज्ञा है औषध-रूपमें देता रहे। जैसे घृत दुग्ध तथा घृतयुक्त मूंग या मसूरका जूस इत्यादि।

अनुमानसे यही सिद्ध होता है कि रोगीको विरेचन तथा पाचन द्रव्य द्वारा लङ्घन करावे तथा दुग्ध या कोई हल्का पथ्य देता रहे। डाक्टरी कायदेसे भी यही प्रतीत होता है कि इस रोगमें बिलकुल उपवास न करना चाहिये। कोई कोई वैद्य महाशय भी इस बातको अंगीकार करते हैं। प्लेग रोगके अंकुरितावस्था पर तथा व्याप्त दशा पर आप मैनफल आदिके योगसे वमन कराकर घृतयुक्त मूंगकी पतली खिचड़ी यथासमय दीजिये तो अवश्य लाभ हो। यह बात अनुभवमें आ चुकी है। घृतयुक्त निसोथके चूर्णसे ज्वरयुक्त विसर्पका शान्त होना लिखा है। आप प्लेग रोगीको उक्त औषधि देकर देखिये अवश्य लाभ होगा; किन्तु जरा दोषोंके पहचाननेकी चेष्टा रखनी चाहिये। हमारे वृद्ध गुरुजीने कई रोगियोंको एक या दो दस्त कराकर खाली त्ररियारीकी जड़ पीसकर गांठ पर लगाकर (जिसकी ग्रन्थि विसर्पमें विधि है) अच्छा किया था। जलौका आदि विधिके द्वारा रक्तमोक्षण भी लोग प्लेगमें करते हैं। महातिक्त घृत तथा त्रायमाणादि घृत विसर्प रोगीके लिये चरकजीने कहा है। घृत विसर्पके लिये परम औषध है और इस बातकी पुष्टता सभी आचार्योंने की है जैसे—

पटोलादि कषायं वा पिवेत त्रिफलया सह।
मसूरविदलैर्युक्तं घृतमिश्रं प्रदापयेत्॥

पटोलपत्र मुद्गानाम् रसमामलकस्य च ।
पाययेत् घृतोन्मिश्रं नरं वीसर्प पीड़ितम् ॥
—च० चि० स्था० अ० ११ ।

पटोलादि शाकको त्रिफलाके साथ पान करनेसे विसर्पकी शान्ति होती है वा घृत मिलाकर मसूरकी दाल दे वा परवल, मूंग और आमलेके रसयुक्त घृत मिलाकर उस मनुष्यको देवे जो विसर्प रोगसे पीडित हो—

अमृतवृषपटोलं निम्बपत्रैरुपेतम् त्रिफलखदिरसारं व्याधिघातं च तुल्यं । क्कथितमिदमशेषं गुग्गुलुर्भागयुक्तं जयति विष विसर्पान् कुष्ठमष्टादशाख्यम् ॥　　　—धन्वन्तरि

गुडूची, अड़ूसा, परवर लती, नीमके पत्ते, त्रिफला, खैरसार (गोंद खैरका), अमलतासका गूदा इन सबको सम भागोंमें लेकर तथा काथ बनाकर गुग्गुल डाल कर पान करनेसे विषजन्य विसर्प और अट्ठारह प्रकारके कुष्ठ छूट जाते हैं। यह काढ़ा जोकि विषजन्य विसर्पके लिये कहा गया है प्लेग रोगियोंको देकर देखा गया है और उनमें कितने ही अच्छे हो गये हैं। मेरे विचारसे यदि इस काढ़ेमें घृत मिलाकर रोगीको दिया जाय तो अधिक फायदा हो। पटोलादि काथमें तथा मसूर या मूंगके जूसको घृतयुक्त, प्लेगक रोगियोंको दिया गया है और फायदा हुआ है। इस बीमारीमें घृत बहुत ही लाभदायक है। हमने इसका अनेक बार अनुभव किया है । इनमें गायका घृत और भी अधिक लाभदायक है। रोगके प्रकट होते ही थोड़े दुग्धमें एक छटांक शुद्ध किया हुआ गोघृत और पांच सात दाने गोलमिर्चकी बुकनी मिला कर पिला देनेसे एक दस्त अवश्य आवेगा। बस दस्तके साथ ही आखोंकी सुर्खी घटने लगती है और गांठें छोटी होकर कोमल पड़ जाती हैं। रोगी तीसरे दिन आराम हो जाता है। यह विधि चक्रदत्तमें लिखी हुई है।

रोगस्तु स्नायुकाख्यो यः क्रिया तत्र विसर्पवत् ।
गव्यं सर्पिस्त्र्यहं पीत्वा निर्गुण्डी स्वरसं त्र्यहं ॥
पिबेत्स्नायुकमत्युग्रं हन्त्यवश्यं न संशयः ॥
—चक्रदत्त विसर्प प्रकरण ।

नाहरू रोगमें विसर्पकी क्रियाके समान क्रिया करनी चाहिये। गायके (शुद्ध किये हुए) घृतको तीन दिन पीकर फिर सम्हालू (मेवड़ी) के स्वरसको तीन दिन तक पीवे तो भयङ्कर नाहरूका नाश होता है। इसमें सन्देह नहीं। इससे स्पष्ट होता है कि नाहरू और विसर्पकी चिकित्सा एक ही है। प्रायः हमने किसी किसी प्लेग रोगीको नाहरू रोग सहित पाया है। डाक्टरोंकी रिपोर्टोंसे आप जान सकते हैं। मैंने संवत् ६७ में कई एक प्लेग रोगियोंको घृतपान कराकर अच्छा किया है। आप पत्र द्वारा इसकी सत्यताके विषयमें जांचकर सकते हैं। महल्ला बूढ़ेनाथ पर छुन्नू ब्राह्मणको प्लेग हो गया और उसी समय यहां भयङ्कर प्लेग लोगोंका संहार कर रहा था। उसने एक छटाक घी बाज़ारसे मँगाकर गरम किया और आध सेर दूधमें मिलाकर पी लिया तथा गरम कपड़ोंके व्यवहारसे सावधान रहा। थोड़ी देर बाद एक खुलासा दस्त हुआ। उसकी आंखोंकी सुर्खी जाती रही। मस्तक हलका हो गया, ज्वर मन्द पड़ गया और पीड़ा भी जाती रही। दूसरे दिन उसने घृतयुक्त मूँगकी पतली खिचड़ी खायी। इसी प्रकार वह तीन दिनमें आरोग्य हो गया और वर्तमान है। इसी प्रकार तीन आदमी, उन्हीं ब्राह्मण महाशयके घरमें, कुछ आहार न कर निरन्तर एक एक छटाक तपाया हुआ घी और उसमें पांच पांच दाने गोल मिर्चकी बुकनी छोड़कर पीनेसे भले चंगे हो गये। वे पकाया हुआ जल भी पीते थे। इसी प्रकार और भी अनेक रोगी आनन्द भैरवकी गोली जो शार्ङ्गधरके पाठसे मूंग बराबर बनी हुई थी चार चार गोली दोनों समयमें खानेसे आराम हो गये। वे घृतयुक्त मूंगकी खिचड़ीका नित्य पथ्य भी लेते थे। इससे यह सिद्ध होता है कि यह रोग किट्टों तथा मूषकोंके कारण विषजन्य है। इसपर यदि गो घृत रोगके होते ही दिया जावे तो रोगीको अवश्य लाभ हो। इस प्लेग रोगको दमन करनेके लिये प्रायः डाक्टरों वैद्यों और हकीमोंने नीमकी पत्ती तथा उसके सभी अङ्गोंके व्यवहारकी बड़ी प्रशंसा की है। इसी प्रकार विसर्प रोगके दमन करनेके लिये नीमकी श्रेष्ठता शास्त्रकारोंने भी स्वीकार की है। क्योंकि नीम परम विषघ्न और कृमि नाशक होता है।

समाचार

महामहोपाध्याय—वैद्यसम्मेलनके एक स्तम्भ कविराज-गणनाथ सेन एम० ए०, एल० एम० एस०, विद्यानिधि, कविभूषण, वैद्यावतंस महोदय की योग्यता कौन नहीं जानता? आनन्दकी बात है कि सरकारने भी उनकी योग्यताकी कदर की है। अभी इसी मासमें सम्राटके जन्मोत्सवके समय सरकारने आपको महा-महोपाध्यायकी उच्च उपाधिसे विभूषित किया है। रायबहादुरी आदिकी उपाधियोंसे इस पदवीकी स्थिति भिन्न है। अन्य उपाधियोंका मूल चाहे खुशामद अथवा सांसारिक व्यवहार पटुतामें ही हो और उससे पदवी पानेवालेकी योग्यताका कुछ भी परिचय न मिलता हो: परन्तु यह पदवी विद्वत्ता सूचक है और इसे पानेवालेके प्रखर पाण्डित्यको प्रकट करती है: अतएव इस पदवीका हमारी दृष्टिमें कहीं अधिक मूल्य है। इसे प्राप्त करनेके लिये हम कविराजजीको सानन्द बधाई देते हैं और योग्यताका आदर करनेके लिये सरकारको भी धन्यवाद देते हैं। ऐसे पदवीदानसे केवल उस व्यक्तिकी ही नहीं: किन्तु पदवीकी भी शोभा होती है। कविराज महोदय योग्य हैं, विद्वान हैं और अपनी योग्यताका फल स्वयं ही नहीं भोगना चाहते, बल्कि प्रत्यक्षशारीर और सिद्धान्तनिदान जैसे उत्कट गवेषणा पूर्ण संस्कृत ग्रन्थ लिखकर अपने देशवासियोंको भी उसका फल चखाना चाहते हैं। अतएव ऐसोंको ही पदवी और सम्मान देकर सम्मानित करना देशकी सरकारके लिये उचित है। आपके पहले कलकत्तेके दो कविराज (कविराज द्वारकानाथ सेन और कविराज विजयरत्न सेन) और भी इस पदवीको अलंकृत कर चुके हैं। इधर कुछ वर्षोंसे इसके बदले वैद्योंके लिये "वैद्यरत्न" की पदवीकी सृष्टि हुई थी। इधर देखते हैं, दो वर्षोंसे किसी भाग्यवान वैद्यको यह नहीं मिली। आशा है सरकार इसपर भी ध्यान देगी।

सहकारी चाहिये।

वैद्यसम्मेलनकी स्थायीसमितिका कार्यसंचालन करनेके लिये एक सहकारी मन्त्रीकी आवश्यकता है। जो सज्जन सच्चे मनसे देशहितव्रतसे प्रेरित होकर आयुर्वेदकी सेवा करना चाहते हों वे सूचित करें। इस कार्यके लिये हिन्दी और संस्कृतमें अच्छी तरह

पत्रव्यवहार कर सकनेकी योग्यता दरकार है। यदि साधारण अंग्रेजी भी आती हो तो और भी अच्छा है। जिन्हें इनके अतिरिक्त कुछ प्रान्तिक भाषाएं भी आती होंगी उनके पत्रोंपर शीघ्र ध्यान दिया जायगा। वेतन आदि पत्र द्वारा निश्चित होगा।

मन्त्री, वैद्यसम्मेलन-स्थायीसमिति,
दारागंज-प्रयाग।

वैद्य चाहिये तो लिखिये।

शीघ्र लिखिये।

नि० भा० वैद्यसम्मेलन कार्यालयसे प्रतिवर्ष जो वार्षिक कार्य-विवरण और आयुर्वेदका वार्षिक इतिहास निकलता है उसमें देशके धर्मार्थ औषधालय, आयुर्वैदिक पाठशालाएं और आयुर्वैदिक सभाओंका वर्णन भी दिया जाता है। जिन सज्जनोंको ऐसी संस्थाओंकी खबर हो वे शीघ्र लिख भेजें। जिन सज्जनोंके पास आयुर्वेद सम्बन्धी हस्त लिखित ग्रन्थ हों वे भी उसकी मूल प्रति या उसकी नकल (नकल करानेका खर्च दिया जायगा) भेज दें अथवा उसका संक्षिप्त विवरण ही लिख भेजें।

जगन्नाथप्रसाद शुक्ल,
मन्त्री, आयुर्वेदविद्यापीठ, दारागंज-प्रयाग।

पं० सुदर्शनाचार्य बी० ए० ने कटरा प्रयागके 'सुदर्शन प्रेस' में मुद्रित किया और जगन्नाथप्रसाद शुक्ल वैद्यने प्रयागके दारागंजसे प्रकाशित किया।